आत्मबोध

(हिन्दी टीका सहित)

श्रीः

आत्मबोधः

(श्रीशंकराचार्यविरचितो वेदांतग्रंथः)

पण्डित–मिहिरचन्द्रकृतभाषाविवरणसहितः

★

मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास™,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई – ४०० ००४.

संस्करण : जून २०१६, सवंत् २०७३

मूल्य : ४० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशकः
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass Prop: Shri Venkateshwar Press, Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s.Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013

भूमिका

★

एतदात्मबोधनामकं प्रकरणं परमपूज्यवेदान्तशास्त्राचार्यश्रीमच्छंकराचार्यप्रणीतम् । अस्य चात्मबोधसाधकत्वेन संसारविच्छेदजनकतया मुमुक्षूपयोगिताऽस्तीति सर्वजनप्रसिद्धम् । आत्मबोधश्च धर्मार्थकाममोक्षरूपचतुर्विधपुरुषार्थान्तर्गतमोक्षसाधकः स चातिदुरूहबृहद्वेदांतप्रकरणैश्चिरसाध्योऽतः श्रीमदाचार्यैः सुखत आत्मबुद्ध्या एतल्लघुप्रकरणं निरमायि एतस्यापि भाषारसिकसाधारण्येन प्रसिद्धिमीहमानैः श्रीमुंबापूःस्थ-श्रीकृष्णदासात्मज क्षेमराज-श्रेष्ठिभिर्भाषोद्धृतयेऽहमयोजि मया चैतद्यथामति भाषायामुद्धृत्य त्वच्चरणयोरर्प्यत इति शम् ॥

लँखग्रामनिवासी—काशीस्थराजकीयप्रधानपाठशालापरीक्षोत्तीर्णः,

पं० मिहिरचन्द्रशर्मा.

श्रीः

आत्मबोधः

भाषाटीकासमेतः

ॐ तपोभिः क्षीणपापानां शांतानां वीतरागिणाम् ।
मुमुक्षूणामपेक्ष्योऽयमात्मबोधो विधीयते ॥१॥

नत्वा ब्रह्म चिदानंदं भाषायामात्मबुद्धये ॥
मया मिहिरचन्द्रेण आत्मबोधो वितन्यते ॥ १ ॥

भा०–कृच्छ्रचांद्रायण और नित्य नैमित्तिक उपासना आदिके अनुष्ठान (करना) रूप तपोंसे अथवा नेत्रआदि इन्द्रियोंके निग्रह-रूप तपसे क्षीण होगये हैं पाप जिनके अर्थात् राग-द्वेष आदि अंतःकरणके दोषोंसे रहित और शान्त अर्थात् क्षोभरहित और वीतराग–अर्थात् इस लोक और परलोकके भोगोंकी इच्छासे

शून्य जो मुमुक्षु पुरुष हैं--अर्थात् जिनको जन्म-जरा--मरण--संसाररूप ग्रन्थिके छेदन करनेकी अभिलाषा है उन मुमुक्षु पुरुषोंको है अपेक्षा जिसकी ऐसा यह आत्मबोध प्रकरण विस्तारसे वर्णन करते हैं--अर्थात् जिससे आत्माका ज्ञान हो ऐसा प्रकरण लिखते हैं ॥ १ ॥

बोधोऽन्यसाधनेभ्यो हि साक्षान्मोक्षैकसाधनम् ।
पाकस्य वह्निवज्ज्ञानं बिना मोक्षो न सिद्ध्यति ॥२॥

भा०—कदाचित् कहो कि तप जप योग आ-दिसे मोक्ष हो सकता है तो आत्मज्ञानको मोक्षका साधन कैसे कहते हो, सो ठीक नहीं; क्योंकि अपने स्वरूपभूत जो आत्मा उसका बोध ही मोक्षका कारण श्रुतियोंसे सिद्ध है और कर्म उपासना तो अन्तःकरणके शोधक हैं, इससे आत्मबोधको मोक्षका साधन होनेमें दृष्टान्त

कहते हैं कि जैसे एक अग्निही पाकका साक्षात् कारण है, इसी प्रकार अन्य साधनोंसे अर्थात् जप, तप, मंत्र आदि नानाप्रकारके कर्मोंकी अपेक्षासे बोध–मोक्षका एकही असाधारण साधन है। इसमें ज्ञानके विना मोक्ष सिद्ध नहीं होता। तात्पर्य यह कि जैसे जगत्में–पाकके काष्ठ अन्न–जल–आदि सहकारि कारण हैं इसीप्रकार परम्परासे जपतप आदि भी मोक्षके सहकारी कारण हैं–साक्षात् कारण नहीं, सोई इन श्रुतियोंमें लिखा है, कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, ज्ञानके विना मोक्ष नहीं होता। प्रकाशरूप ब्रह्मको जानकर सब पाशों-[बंधन] की हानि होती है–इससे, ज्ञानके विना मोक्ष सिद्ध नहीं होता यह सिद्धान्त है ॥ २ ॥

---

(१) ज्ञानादेव तु कैवल्यम्–ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।
(२) ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः ।

अविरोधितया कर्म नाविद्या विनिवर्तयेत् ।
विद्याऽविद्यां निहन्त्येव तेजस्तिमिरसंघवत् ॥३॥

भा०—कदाचित् कहो कि विचित्र शक्तिवाले कर्मोंके ही द्वारा जनक आदि सिद्धिको प्राप्त हुए इससे कर्मोंके द्वारा अज्ञानका नाश क्यों मानते हो सो ठीक नहीं; क्योंकि जो पदार्थ जिसका विरोधी नहीं होता, वह उसके नष्ट करनेमें समर्थ भी नहीं होता, इससे अज्ञानके अविरोधी कर्म अज्ञानको नष्ट नहीं कर सकते और कर्मसे ही जनक आदि ससिद्धिको प्राप्त भये वहां संसिद्धि शब्दसे अन्तःकरणकी शुद्धि लेते हैं मुक्ति नहीं, इस बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं कि, अज्ञानके अविरोधि होनेसे कर्म अविद्याको निवृत्त नहीं कर सकता, क्योंकि ये दोनों जड पदार्थ हैं, इससे मैं शुद्धबोध-मुक्तस्वरूप ब्रह्म हूं इस प्रकारका जो विद्या रूप ब्रह्म और जीवात्माकी एकताका ज्ञान है वही मैं

मनुष्य हूं, सुखी हूं, दुःखी हूं इत्यादि अविद्यारूप अज्ञानका इस प्रकार निवर्त है जैसे--सूर्य आदिक प्रकाशरूप तेज अन्धकारका निवर्तक होता है तिससे आत्मज्ञानके प्रकाशकालमें ही सम्पूर्ण अज्ञानका नाश हो जाता है ॥ ३ ॥

परिच्छिन्न इवाज्ञानात्तन्नाशे सतिकेवलः।
स्वयंप्रकाशते ह्यात्मामेघापायेंऽशुमानिव ॥४॥

भा०--कदाचित् कहो कि-आत्मा प्रतिशरीरमें परिच्छिन्न है--अर्थात् जन्मसे ही नाशवान् प्रतीत होता है तो जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे अज्ञान की निवृत्ति कैसी बन सकती है ? सो ठीक नहीं क्योंकि, अज्ञानसे यद्यपि आत्मा परिच्छिन्नके समान प्रतीत होता है तथापि अज्ञानके नाश होते ही अपरिच्छिन्नके समान स्वयम्प्रकाशरूप हो जाता है इस बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं, कि सर्वत्र व्यापक रूप अद्वितीय आत्मा

अज्ञानसे कल्पित देव मनुष्य आदि-शरीरोंके अध्यास (भ्रम) से परिच्छिन्न (आच्छादित) के समान प्रतीत होता है और जब तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके द्वारा आत्मा और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान हो जाता है, तब अज्ञानके किये मिथ्या अध्यासरूप आरोपका नाश होनेसे आत्मा केवल अर्थात् सजातीय-विजातीय-स्वगत आदि तीनों भेदोंसे रहित स्वप्रकाश ब्रह्मरूप प्रतीत इस प्रकार होता है जैसे आवरणरूप मेघों-का नाश होनेपर प्रकाशरूप सूर्य्य प्रतीत होता है, इससे यह सिद्ध है -अज्ञानके नाश होते ही आत्मा स्वयंप्रकाशमान ब्रह्मरूप हो जाता है ॥ ४ ॥

अज्ञानकलुषं जीवं ज्ञानाभ्यासाद्धि निर्मलम् ।
कृत्वा ज्ञानं स्वयं नश्येज्जलं कतकरेणुवत् ॥५॥

भा०--कदाचित् कहो कि अज्ञानके नाशसे केवल ब्रह्मरूप आत्माका होना असम्भव है; क्यों

कि, अज्ञानके नाश करनेवाली जो वृत्ति हैं; उनके ज्ञानसे द्वैतकी प्राप्ति होयगी--ब्रह्मज्ञानकी नहीं सो ठीक नहीं। यद्यपि जीवात्मा अज्ञानसे मलिन है तथापि वास्तवमें शुद्ध है, इस बातको दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं--कि कर्ता भोक्ता सच्चिदानंद-स्वरूप आत्मा यद्यपि अज्ञानसे अपनेको कर्त्ता भोक्ता जीवरूप भ्रमके द्वारा मानता है; इससे अज्ञा-नसे मलिन भी जीव ज्ञानके अभ्याससे निर्मल है, अर्थात् कर्ता भोक्तासे भिन्न सच्चिदानन्द-कूटस्थ साक्षीरूप ब्रह्म है, इस पूर्वोक्त ज्ञानाकार जो वृत्ति हैं वे ज्ञानको उत्पन्न करके इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं जैसे कतकरेणु निर्मली बूटि जलको निर्मल करके आपभी नष्ट हो जाती है, इससे ज्ञानके अभ्याससे जीवात्माके निर्मल होनेमें कुछ भी संशय नहीं है ॥ ५ ॥

संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादिसंकुलः ॥
स्वकालेसत्यवद्भाति प्रबोधेऽसत्यवद्भवेत्॥६॥

भा०–कदाचित् कहो कि साक्षात् प्रत्यक्षरूप से जब संसार सत्य प्रतीत होता है तो आत्माकी केवल रूपताके ज्ञानसे अद्वैत ब्रह्मज्ञान कैसे हो सकता है ? सो ठीक नहीं, क्योंकि; मिथ्या जगत् से आत्माकी अद्वैततामें हानि नहीं हो सकती इसी बातको स्वप्नके दृष्टान्तसे सिद्ध करते हैं कि रागद्वेष आदिसे युक्त जो स्वप्नके तुल्य संसार है वह निद्राके समयमें स्वप्नके तुल्य जो अपनी स्थिति है उसके समयमें सत्यके समान यद्यपि प्रतीत होता है तथापि प्रबोधके होनेपर अर्थात् आत्मा और ब्रह्मकी एकताका जो ज्ञान उसके अनन्तर क्षणमें ही असत्य (मिथ्या) के समान होजाता है, इसीसे मिथ्याभूत जगत्से आत्माकी अद्वैततामें कोई हानि नहीं है ॥ ६ ॥

तावत्सत्यं जगद्भाति शुक्तिकारजतं यथा ।
यावन्न ज्ञायते ब्रह्म सर्वाधिष्ठानमद्वयम् ॥७॥

भा०—जगत्के अधिष्ठान कूटस्थ साक्षीरूप आत्माका जबतक ज्ञान नहीं होता है तबतकही संसार सत्यके समान प्रतीत होता है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं जैसे—जब तक नीलपृष्ठ त्रिकोणाकार शुक्तिका ज्ञान नहीं होता तबतक ही शुक्ति (सीपी) का रजत (चांदी) सत्यके समान प्रतीत होती है तिसी प्रकार जबतक सबके अधिष्ठान अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान नहीं होता है तबतक ही जगत् सत्य प्रतीत होता है और ब्रह्मज्ञानके होने ही शुक्ति रजतके समान मिथ्या प्रतीत होने लगती है ॥ ७ ॥

सच्चिदात्मन्यनुस्यूते नित्ये विष्णौ प्रकल्पिताः ।
व्यक्तयो विविधाः सर्वा हाटके कटकादिवत् ॥८॥

भा०—तिससे संपूर्ण जगत् ब्रह्ममें कल्पित है इस बातको दृष्टांतसे दृढ करते हैं कि, सत्चित् आत्मास्वरूप और अनुस्यूत अर्थात् जैसे सूत्रमें मणि और मणिमें सूत्र अनुगत हैं इस प्रकार ओत प्रोत और नित्य और व्यापक (चराचरमें स्थित) और सबके उपादान कारणरूप ब्रह्ममें नाना प्रकारकी जो देव, मनुष्य, पशु, कीट आदि व्यक्ति हैं अर्थात् मूर्तिमान् नाम रूपात्मक जगत् हैं वे सब इस प्रकार कल्पित हैं जैसे सुवर्णमें कटक, कुंडल आदि कल्पनामात्र है वस्तुतः सुवर्णही सत्य है, इससे नाम रूपात्मक जगत् मिथ्यारूप है और शुद्ध रूप आत्मा सत्य है इसमें कोई संदेह नहीं है ॥ ८ ॥

यथाऽऽकाशो हृषीकेशो नानोपाधिगतो विभुः ।
तद्भेदाद्भिन्नवद्भाति तन्नाशे सति केवलः ॥९॥

भा०--कदाचित् कहो कि, प्रपंच मिथ्या भी है और जीवभेद सत्य है तो प्रपंचके अधिष्ठान-रूप परमात्मामें सत्यता और अद्वितीय रूपता कैसे प्रतीत हो सकती है ? सो ठीक नहीं, क्योंकि वास्तवमें तो आत्मा अद्वितीय है और द्वंभ कल्पित है इस बातको ही दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे व्यापकरूप आकाश घट मठ आदि उपाधियोंमें प्रविष्ट होकर तिस २ उपाधिके भेदसे घटाकाश मठाकाशरूप प्रतीत होता है इसी प्रकार संपूर्ण इंद्रियों (अंतःकरण आदि) का ईश्वर (प्रेरक) विभु नाना प्रकारकी जो देह आदि उपाधि हैं उनमें प्रविष्ट हुआ उन उपा-धियोंके नाश होनेपर केवल (एक) ब्रह्मरूप प्रतीत होता है ॥ ९ ॥

नानोपाधिवशादेव जातिनामश्रमादयः ।
आत्मन्यारोपितास्तोये रसवर्णादिभेदवत् ॥१०॥

भा०--कदाचित् कहो कि यदि मैं ब्राह्मण ब्रह्मचारी संन्यासी हूं इत्यादि जाति वर्णाश्रम नाना प्रकारके धर्मोंसे युक्त आत्मा प्रतीत होता है तो असंग कैसे कहते हो सो ठीक नहीं, क्योंकि जाति–वर्ण–आश्रम--आदि धर्म असंग आत्मामें कल्पित हैं वास्तवमें नहीं इस बातका दृष्टांतसे वर्णन करते हैं कि, पूर्वोक्त नाना प्रकारकी देह आदि उपाधियोंकी महिमासे ही असंग आत्माके विषे जाति नाम आश्रम आदि इस प्रकार आरोपित है अर्थात् भ्रमसे प्रतीत होते हैं जैसे जलके विषे रस (कटु--कषाय--लवण आदि) और रक्त पीत श्याम आदि रंग प्रतीत होते हैं अर्थात् तिस २ रस रंगकी एकतासे जलका भी वही रंग प्रतीत होता है, इसी प्रकार जाति आदिकोंके संग एकतासे आत्मामें भी भ्रमसे जाति--वर्ण--प्रतीत होते हैं वस्तुतः आत्मामें भी जाति आदि कोई भी धर्म नहीं है ॥ १० ॥

पंचीकृतमहाभूतसंभवं कर्मसंचितम् ।
शरीरं सुखदुःखानां भोगायतनमुच्यते ॥११॥

भा०--अब अविद्यासे कल्पित उपाधियोंके स्वरूपको कहते हैं कि, पंचीकरण किये जो पृथिवी जल तेज-वायु-आकाश-पांच महाभूत हैं, जगत्के परिणामी उपादानरूप उनसे है उत्पत्ति जिसकी ऐसा जो प्रारब्ध कर्मसे संचित (रचित) स्थूल शरीर है वह आत्माके सुख दुःखोंका जो भाग उसका आयतन (स्थान) कहाता है ॥ ११ ॥

पंचप्राणमनोबुद्धिदशेंद्रियसमन्वितम् ।
अपचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मांगं भोगसाधनम्॥१२॥

भा०--अब सूक्ष्म शरीररूप उपाधिको कहते हैं कि, प्राण अपान-उदान व्यान-समान और संकल्प विकल्परूप अन्तःकरणके वृत्ति है नाम जिसका ऐसा मन, और निश्चयात्मक अन्तःकरणकी

वृत्तिरूप बुद्धि और श्रोत्र, त्वचा, चक्ष, जिह्वा घ्राण ये पांच ज्ञानेंद्रिय और वाणी, हस्त, पाद, गुदा लिंग ये पांच कर्मेंद्रिय--इन सत्रह तत्त्वोंसे युक्त, और पञ्चीकरण नहीं किये पांच सूक्ष्म महाभूतोंसे उत्पन्न, जो सूक्ष्म शरीर है वह आत्माके भोगोंका साधन[हे तु] है, यह आत्माकी तीसरी उपाधि है ॥ १२ ॥

अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यमात्मानमवधारयेत् ॥१३॥

भा०--अब कारणशरीररूप तीसरी उपाधिको कहते हैं कि अनादि जो सत्य असत्य कहनेके अयोग्य और जगत्की उत्पत्ति करनेमें समर्थ माया है, यदि वह माया सत्य है तो ज्ञानसे नष्ट न होगी और असत्य है तो उससे जगत्की उत्पत्ति न होगी इससे सत्य असत्य रूपसे अनिर्वचनीया है ऐसी जो समष्टि व्यष्टिरूप

जगत्--स्थूल सूक्ष्मरूप शरीर आदिका उपादान कारण माया है वह कारण उपाधि कहाती है इन पूर्वोक्त स्थल, सूक्ष्म, कारण शरीररूप उपाधियोंसे भिन्न आत्माका निश्चय करे अर्थात् इन तीनों उपाधियोंके साक्षीरूप आत्माको इस प्रकार भिन्न समझे जैसे घट आदिका द्रष्टा घट आदिसे भिन्न होता है ॥ १३ ॥

पंचकोशादियोगेन तत्तन्मय इव स्थितः ।
शुद्धात्मानीलवस्त्रादियोगेन स्फटिकोयथा॥१४॥

भा०--कदाचित् कहो कि पूर्वोक्त तीन उपाधियोंसे भिन्न सच्चिदानंदरूप आत्मा नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा प्रत्यक्षमें अन्नमयआदिकोशरूप इस श्रुतिसे प्रतीत होता है, कि वह यह पुरुष अन्नरसमय है इससे कोश ही आत्मा है, कोशों-

१ स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।

से भिन्न नहीं सो ठीक नहीं; क्योंकि आत्मा जो अन्नमय आदि कोशरूप प्रतीत होता है वह देह और आत्माकी एकताके भ्रमसे है, वास्तवमें आत्मा भिन्न है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि, अन्नके रससे उत्पन्न अन्नसेबढा पृथिवी रूप अन्नमें लीन, वह अन्नमय कोश और पांचकर्मेंद्रिय और पांच प्राणरूपप्राणमयकोश और पांच ज्ञानेंद्रिय और मनरूप मनोमयकोश और पांच ज्ञानेंद्रिय और बुद्धिरूप विज्ञानमयकोश और मलिन सत्त्व गुण है प्रधान जिसमें ऐसी जो कारणशरीरभूत प्रिय मोद आदि वृत्तियों सहित अविद्या है वह आनंदमयकोश होता है इन पांचोंकोशोंके योगसे अर्थात् कोशोंकी महिमासे आच्छादित है सत् चित् आनंदरूप जिसका ऐसा आत्मा तिस २ कोशरूपके समान स्थित है अर्थात् कोशोंके संग एकताके भ्रमसे अन्नमय

आदिरूप प्रतीत होता है और आदि पदके देने-
से स्थूल, कृश और क्षुधा, तृषा आदि धर्मवान्
भी भ्रमसे ही प्रतीत होता है, वास्तवमें तो आत्मा
शुद्ध चेतनरूप है तथापि जिस २ कोशके संग
आत्माकी एकताका भ्रम होता है; उस २ कोश-
रूपही आत्मा प्रतीत होता है; जैसे मैं मनुष्य
मोटा हूं यह अन्नमय, मैं भूखा प्यासा हूं यह प्रा-
णमय, देह घर पुत्र आदि मेरे हैं यह मनोमय, मैं
ज्ञानी हूं मूर्ख हूं यह विज्ञानमय, मैं सुखी हूं यह
आनंदमय कोशरूप प्रतीत होता है। इस प्रकार
कोशोंके जो मिथ्या धर्म हैं वे आत्मामें भ्रमसे
प्रतीत होते हैं, स्वभावसे आत्मामें कोईभी धर्म
नहीं है और पूर्वोक्त श्रुतिमें जो आत्माको अन्नर-
समय कहा है वह सूक्ष्म ब्रह्मरूप वस्तुके ज्ञानार्थ
है क्योंकि आत्मा एक है और कोश अनेक हैं,
और कोश उत्पन्न और विनाशी हैं आत्मा अवि-

नाशी है और कोश धर्मी है, आत्मा धर्मरहित है इन कारणोंसे आत्मा कोशरूप कैसे हो सकता है और आत्माकी जो तिस २ कोशरूप प्रतीति है वह इसप्रकार भ्रमसे है जैसे स्वभावसे शुद्ध भी स्फटिक नील पीत वस्त्र आदिके योगसे नीला और पीला प्रतीत होता है ॥ १४ ॥

वपुस्तुषादिभिः कोशैर्युक्तं युक्त्यावघाततः ।
आत्मानमंतरं शुद्धं विविच्यात्तंडुलं यथा॥१५॥

भा०–यद्यपि कोश और आत्माकी एकरूपताके अभ्याससे आत्मा कोशरूप प्रतीत होता है तथापि कोशोंसे पृथक् आत्माके विवेक करनेसे आत्मा शुद्धरूप प्रतीत होसकता है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि, जैसे तुष (भूसी) आदिसे युक्त भी चावलोंका शुद्ध आकार कूटना आदि युक्तिके द्वारा भिन्नशुक्लरूप प्रतीत होता है

तैसे ही अन्नमय आदि कोशोंकी विचाररूप युक्तिके द्वारा कोशोंके भीतर व्यापकरूप आत्माके शुद्धरूपकी प्रतीति होती है और अन्नमय कोश पंचमहाभूतोंका कार्य होनेसे घटआदिके समान आत्मा नहीं होसकता और अन्नमयकोश (देह) को आत्मा मानोगे तो वर्तमान शरीरमें जो सुख दुःख भोगे जाते हैं वे विनाकर्मकेही मानने पड़ेंगे और इस शरीरके जो पुण्यपापरूप कर्म हैं उनका विना फल भोगेही नाश मानना पड़ेगा इसप्रकार अकृतका अभ्यागम और कृतका नाशरूप दोष हो जायगा, क्योंकि शरीररूप आत्मा जन्मसे पूर्व और मरणके अनंतर नहीं रहता है, इससे अन्नमयकोश है आत्मा नहीं है और अपंचीकृत पांच महाभूतोंका कार्य जडरूप जो प्राणमय कोश रूप वह भी आत्मा नहीं है, क्योंकि वह जड है और आत्मा चेतन है, और स्थूल देहके

समान मनोमय कोश भी आत्मा नहीं है, क्योंकि मन संकल्प विकल्पात्मक है और आत्मा संकल्प विकल्पसे रहित है और मन सत्वगुणका कार्य है और आत्मा नित्य है और विज्ञानमयकोश भी आत्मा नहीं है, क्योंकि विज्ञानमय सत्वगुणका कार्य है और परिणामी है और आत्मा परिणामी से भिन्न है और आनंदमयकोश भी आत्मा नहीं है क्योंकि अविद्यावृत्तिवाला वह घटआदि-के समान जड है और प्रिय मोद आदि वृत्ति-योंसे युक्त है और आत्मा वृत्तियोंसे रहित और नित्य है इस प्रकार पंच कोशोंसे भिन्न जो परमात्मा है वह सच्चिदानंद साक्षीरूप है ॥ १५ ॥

तदा सर्वगतोऽप्यात्मा न सर्वात्राऽवभासते ।
बुद्धावेवावभासेत स्वच्छेषु प्रतिबिंबवत् ॥१६॥

भा०--यदि आत्मा व्यापक ब्रह्मस्वरूप है तो सर्वत्र प्रतीत होना चाहिये इस शंकाका उत्तर देते हैं

कि आत्मा तीनों कालोंमें सब वस्तुओंमें व्यापक रूपसे वर्तमान भी है तो भी सर्वत्र प्रतीत नहीं होता अर्थात् अस्ति, भाति, प्रियरूपसे सदैव सम्पूर्णघट आदि पदार्थोंमें यद्यपि अनुभवरूप आत्मा व्यापक है तथापि ज्ञाता (जाननेवाला) रूप आत्मा बुद्धिके विषे ही इस प्रकार भासता है जैसे स्वच्छ पदार्थमें ही सूर्य आदिका प्रतिबिंब पडता है मलिनमें नहीं अर्थात् सत्वगुणका कार्य होनेसे शुद्ध जो बुद्धि है उसमें इस प्रकार आत्माका भान होता है जैसे घट पट कांच आदि मृत्तिकाके कार्योंमें निर्मल जो दर्पण उसमें ही मुख आदिक और अपनी किरणोंके द्वारा सर्वत्र व्यापक सूर्यका जलमें ही प्रतिबिंब पडता है घट आदिके विषे नहीं, इससे यह सिद्ध भया कि देह आदि जो रजोगुण तमोगुणके कार्य हैं उनमें आत्माकी प्रतीति नहीं हो सकती ॥ १६ ॥

देहेंद्रियमनोबुद्धिप्रकृतिभ्यो विलक्षणम् ।
तद्वृत्तिसाक्षिणं विद्यादात्मानं राजवत्सदा॥ १७॥

भा०—देह इंद्रिय आदिके विषे वर्तमान भी आत्मा उनसे भिन्न है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि देह दश इंद्रिय मन बुद्धि और प्रकृति (माया) इनसे विलक्षण अर्थात् देह आदि माया-के कार्य और जड, परिणामी दृश्य हैं और आत्मा इनसे भिन्न चेतनरूप, परिणाम रहित, अदृश्य, सत्यरूप है और देह आदिकी वृत्तियोंका साक्षी है अर्थात् देहकी बाल्यावस्थारूप वृत्ति और रूप आदिमें नेत्र आदिकी वृत्तियोंके साक्षी आत्माको सदैव राजाके समान जाने जैसे सभामें स्थित राजा सभामें स्थित सम्पूर्ण मनुष्योंका साक्षी प्रेरक है और उनसे भिन्न है इसी प्रकार आत्माको भी देह आदिसे भिन्न और देह आदिका साक्षी रूप जानै ॥ १७ ॥

व्यापृतेष्विद्रियेष्वात्मा व्यापारीवाविवेकिनाम् ।
दृश्यतेऽभ्रेषु धावत्सु धावन्निव यथा शशी॥१८॥

भा०—कदाचित् कहो कि आत्मा भी व्यवहार-वाला देह इंद्रिय आदिके संघातमें प्रतीत होता है इससे साक्षीरूप नहीं हो सकता क्योंकि साक्षी उनसे भिन्न होता है जिनका साक्षी होता है, सो ठीक नहीं क्योंकि अज्ञानियोंको भ्रमसे आत्मा व्यवहारीके समान प्रतीत होता है । वस्तुतः आत्मामें कोई भी व्यापार नहीं है इस बातको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि नेत्र आदि इंद्रिय जब अपने अपने व्यापारोंमें व्यवहार करती हैं अर्थात् अपने २ विषयोंको ग्रहण करती हैं तब इन्द्रियोंके व्यवहार करनेपर आत्मा भी व्यवहार करनेवालेके समान अविवेकियोंको प्रतीत होती है अर्थात् मूर्खपुरुष आत्माको भी व्यवहारीमान लेते हैं और वह उनका मानना इसप्रकार भ्रमसे

हैं कि, जैसे मेघोंके चलनेपर चंद्रमा भी चलता प्रतीत होता है, और बुद्धिमान् मनुष्य मेघोंके समान चंद्रमाको चलता नहीं मानते हैं और न आत्माको व्यापारी मानते हैं क्योंकि वस्तुतः आत्मा व्यापाररहित है ॥ १८ ॥

आत्मचैतन्यमाश्रित्य देहेंद्रियमनोधियः ।
स्वकीयार्थेषु वर्तंते सूर्यालोकं यथा जनाः॥१९॥

भा०—कदाचित् कहो कि देह इन्द्रिय आदि जडपदार्थ व्यापारी हैं तो चेतनभी मानने चाहिये और देह इन्द्रिय आदि चेतन होयँगे तो वे आत्मरूप भी हो जायँगे सो ठीक नहीं, क्यों कि चेतन आत्माके आश्रयसे ही देह इन्द्रिय अपने २ व्यवहारमें वर्ते हैं इसबातको दृष्टान्तसे प्रगट करते हैं कि आत्माकी चेतनताका आश्रय लेकर देह इंद्रिय मन बुद्धि ये अपने विषयों-

में इस प्रकार वर्तती हैं जैसे सूर्यके प्रकाशके आश्रयसे सम्पूर्ण जन अपने अपने व्यवहारमें वर्तते हैं इससे देह इंद्रिय आदि स्वतः चेतन नहीं किन्तु आत्माकी चेतनता ही उनमें प्रतीत होती है इसीसे वे आत्मरूप नहीं होसकते ॥ १९ ॥

देहेंद्रियगुणान्कर्माण्यमले सच्चिदात्मनि ।
अध्यस्यंत्यविवेकेन गगने नीलिमादिवत् ॥२०॥

भा०—कदाचित् कहो कि, आत्मा चेतनरूप है तो भी उसमें जन्म मरण, यौवन, वृद्ध, काण बधिर, दर्शन, श्रवण आदि व्यवहार प्रतीत होनेसे आत्मा--जन्ममृत्यु--वाला प्रतीत होता है, सो ठीक नहीं क्योंकि, पूर्वोक्त जन्म--मृत्यु आदि व्यहार जो आत्मामें प्रतीत होते हैं वे अविवेकसे आत्माके विषे आरोपित हैं वस्तुतः आत्मा देह- इंद्रिय आ- दिके धर्मोंसे रहित है इस बातको दृष्टांतसे दृढ

करते हैं कि, देह और इन्द्रियोंके जो अन्ध, बधिर आदि धर्म हैं और गमन वचन आदि जो कर्म हैं उनको निर्मल अर्थात् अज्ञानके कार्य देह इंद्रिय नाम रूप संसार आदिमलसे रहित सच्चित् आनंदस्वरूप आत्मामें अविवेकसे मूढ पुरुष इस प्रकार आरोप करते हैं जैसे रूपरहित आकाशमें अविवेकसे नील पीत रंगोंका अज्ञानी पुरुष आरोप करते हैं वस्तुतः आत्मामें जन्म मरण आदि कोई भी धर्म नहीं है ॥ २० ॥

अज्ञानान्मानसोपाधेः कर्तृत्वादीनि चात्मनि ।
कल्प्यंतेऽम्बुगते चन्द्रे चलनादिर्यथाम्भसः। २१॥

भा०--कदाचित् कहो कि देह आदिके जन्म आदि धर्म आत्माके विषय; मत हो परंतु मैं कर्त्ता भोक्ता पुण्यमान् पापी सुखी हूं इत्यादि

प्रतीतिसे आत्मा कर्त्ता और भोक्ता प्रतीत होताहै और नैय्यायिक आत्माको कर्त्ता भोक्ता मानते भी हैं सो ठीक नहीं क्योंकि, कर्तृत्व भोक्तृत्व-आदि अन्तःकरणके धर्म हैं वे अन्तःकरण और आत्माकी एकरूपताके अध्यास (भ्रम) से आत्मामें आरोपित (मानो) हैं इस बातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं कि मनकी उपाधि जो कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि धर्म हैं उनसे आत्माका सच्चिदानंदरूप आच्छादित (ढका) है इससे आत्माके यथार्थ रूपको न जानकर नैयायिक आदि अज्ञानी पुरुष कर्तृत्व–भोक्तृत्व आदि धर्मोंकी आत्माके विषे अज्ञानसे इस प्रकार कल्पना करते हैं जैसे चलने आदि जलके धर्मों-को जलमें प्रतिबिम्बित चंद्रमामें मान लेते हैं इससे आत्मा न कर्ता है भोक्ता है ॥ २१ ॥

रागेच्छासुखादि बुद्धौ सत्यां प्रवर्त्तते ।
सुषुप्तौ नास्ति तन्नाशे तस्माद् बुद्धेस्तु नात्मनः २२

भाषा—अब राग इच्छा आदि जो अन्तःकरणके धर्म हैं वे भी अज्ञानसे आत्मामें कल्पित हैं इस बातको अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे कहते हैं कि, विषयोंकी विशेष अभिलाषारूप और सामान्य अभिलाषारूप इच्छा और सुखदुःख कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि संपूर्ण धर्म जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाके विषे बुद्धि रहती है तो राग आदि प्रवृत्त होते हैं और सुषुप्ति अवस्थामें अपने कारणरूप अज्ञानमें बुद्धिका लय होनेसे कोई भी राग आदि धर्म प्रतीत नहीं होता अर्थात् बुद्धिके होनेपर रागोंका होनारूप अन्वय बुद्धिके नाश होनेपर रागोंका न होनारूप व्यतिरेक इन अन्वय व्यतिरेकोंसे पूर्वोक्त राग आदि धर्म बुद्धिके हैं आत्माके नहीं ॥ २२ ॥

प्रकाशोऽर्कस्य तोयस्य शैत्यमग्नेर्यथोष्णता ।
स्वभावः सच्चिदानंदनित्यनिर्मलतात्मनः ॥२३॥

भा०--कदाचित् कहो कि यदि आत्माका स्वभाव रागआदिरूप नहीं तो आत्माका स्वभाव कैसा है ? इस शंकाके उत्तरमें दृष्टान्तोंसे आत्माके स्वभावका वर्णन करते हैं कि, जैसे सूर्यका प्रकाश स्वभाव है और जलका शीत स्वभाव है और अग्निका उष्ण स्वभाव है इसी प्रकार आत्माका सत्‌चित्‌आनन्द--नित्यनिर्मल स्वभाव है ॥ २३ ॥

आत्मनः सच्चिदंशश्च बुद्धेर्वृत्तिरिति द्वयम् ।
संयोज्य चाविवेकेन जानामीति प्रवर्तते ॥२४॥

भा०--कदाचित् कहो कि, मैं जानता हूं और मैं सुखी हूं इस ज्ञानका आश्रय आत्मा प्रतीत होता है तो उसको निर्विकार सच्चिदानन्द कैसे कह

सकते हो ? इस शंकाके उत्तरमें लिखते हैं कि, आत्माका सत्-चित्-अंश जो बुद्धिकी वृत्तिमें पड़ता है और अज्ञानरूप आनन्दका अंश जो बुद्धिकी वृत्ति है इन दोनोंको अविवेकसे मिलाकर मैं जानता हूं, मैं सुखी हूं, इत्यादि व्यवहारोंमें जीव प्रवृत्त होता है और वस्तुतः असंग आत्मामें ज्ञानश्रवण-सुख-दुःख आदि नहीं होसकते, क्योंकि ज्ञान और सुखाकार वृत्ति बुद्धिका परिणाम है इससे ज्ञान आदिका आश्रय बुद्धि है आत्मा नहीं। आत्मामें जो इनकी प्रतीति है वह बुद्धि और आत्माकी एकताके भ्रमसे है इससे आत्मा निर्विकार सच्चिदानन्दरूप है ॥ २४ ॥

आत्मनो विक्रिया नास्ति बुद्धेर्बोधो न जात्विति।
जीवः सर्वमलं ज्ञात्वा कर्ता द्रष्टेति मुह्यति ॥२५॥

भाषा-अब इस पूर्वोक्तका ही विशेषकर वर्णन करते हैं। आत्मामें कोई विकार नहीं है

क्योंकि इस श्रुतिके अनुसार आत्मा निर्गुण क्रियारहित शान्त पापरहित और निरंजन (निर्मल) है। और इस स्मृतिमें भी लिखा है कि, आत्मा अव्यक्त चिन्ताके अयोग्य और विकाररहित है और बुद्धिमें कदाचित् भी बोध (ज्ञान) नहीं है क्योंकि बुद्धि मायाका कार्य होनेसे जड है तथापि अन्तःकरणमें प्रतिबिंबित चेतनकी चेतनतासे सम्पूर्ण देह इंद्रिय आदि जड पदार्थ चेतनरूप प्रतीत होते हैं इससे अन्तःकरण और आत्माके अभेद ज्ञानसे बुद्धिके कर्ता भोक्ता आदि धर्म भ्रमसे आत्मामें प्रतीत होते हैं इससे जीव सबको अपनेमें जानकर मैं कर्ता हूं और द्रष्टा हूं इस प्रकार मोहको प्राप्त होता है ॥२५॥

---

१ निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम् ।
२ अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

रज्जुसर्पवदात्मानं जीवं ज्ञात्वाऽभयं वहेत् ।
नाहं जीवः परात्मेति ज्ञातं चेन्निर्भयो भवेत्॥२६॥

भाषा—अब आत्मामें मिथ्या आरोपरूप अज्ञानके फल और तत्त्वज्ञानके फलको दिखाते हैं कि जैसे अंधकारसे युक्त देशमें मनुष्य रज्जुकोही सर्प समझता है इसी प्रकार आत्माको जीव जान कर भयको प्राप्त होता है अर्थात् जैसे रज्जुसर्पके ज्ञानसे भय कंप होते हैं इसी प्रकार विकार-रहित आत्माको जीव माननेसे आत्मामें अनेक प्रकारके संसारके दुःखरूप भय प्रतीत होते हैं अर्थात् आत्माका अज्ञानी जन्ममरणरूप भयको प्राप्त होता है और वह भय जीव और आत्माके द्वैतज्ञानसे होता है क्योंकि इस श्रुतिमें लिखा है कि, दूसरेसे भय होता है और जो किंचि-

---

१ द्वितीयाद्वै भयम्भवति––उदरमन्तरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति–नचेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।

त्भी भेद करता है उसको भय होता है। यदि आत्माको नजाने तो बडीही नष्टता होती है और इस स्मृतिमें[1] भी कहा है कि, किंचित् भी भेद करे तो रौरव नरकमें जाता है और जब मैं जीव नहीं किन्तु परमात्मा हूं ऐसा जानता है अर्थात् तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके विचारसे जीवको सच्चिदानन्द परब्रह्म स्वरूप समझता है, तब मनुष्य निर्भय होता है सोई इस श्रुति[2]में लिखा है कि, जो ब्रह्मको जानता है वह ब्रह्म ही होता है ॥ २६ ॥

आत्मावभासयत्येको बुद्ध्यादीनींद्रियाणि च ॥
दीपो घटादिवत्स्वात्मा जडैस्तैर्नावभास्यते॥२७॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि आत्मा बुद्धि आदिके निकट है तो बुद्धि आदि उसे क्यों नहीं

१ ईषदप्यन्तरं कृत्वा रौरवं नरकं व्रजेत् ।
२ ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ।

जानते सो ठीक नहीं; क्योंकि जडरूप बुद्धि आदिको असंग आत्माका ज्ञान नहीं होसकता इस बातको दृष्टान्तसे कहते हैं कि एक भी आत्मा मन बुद्धि चित्त अहंकार और इन्द्रिय आदिका इस प्रकार प्रकाश करता है जैसे घट आदि पदार्थोंका दीपक प्रकाश करता है और अपने आत्मास्वरूप वह परमात्मा बुद्धि आदि जड पदार्थोंसे इस प्रकार प्रकाशित नहीं होता जैसे घट आदिसे दीपकका प्रकाश नहीं होता ॥२७॥

स्वबोधे नान्यबोधेच्छा बोधरूपतयात्मनः।
न दीपस्यान्यदीपेच्छा यथा स्वात्मा प्रकाशते २८

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि बुद्धिआदिसे आत्मा प्रकाशित नहीं होता तो उसका प्रकाश किससे होता है ? इस शंकाके उत्तरमें बोधरूप आत्माका स्वयं ही ज्ञान होता है इस बातको

दृष्टान्तसे दृढ करते हैं कि आत्मा स्वयं बोधरूप है इससे बोधरूप आत्माके बोधमें अन्य बोधकी इस प्रकार अपेक्षा नहीं, जैसे—एक दीपकको अपने प्रकाशके लिये अन्य दीपककी अपेक्षा नहीं इससे स्वात्मा स्वयं प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

निषिध्य निखिलोपाधीन्नेति नेतीति वाक्यतः।
विद्यादैक्यं महावाक्यैर्जीवात्मपरमात्मनोः ॥२९॥

भा०—कदाचित् कहो कि, यदि आत्माका स्वतः ही साक्षात्कार (प्रत्यक्ष) है तो यत्नके विना ही, सब मुक्त हो जायँगे तो श्रवण मनन आदि जो मुक्तिके उपाय हैं वे सब व्यर्थ हो जायँगे सो ठीक नहीं, क्योंकि अपरोक्ष रूपसे जो आत्माके चैतन्यका ज्ञान है वह सामान्य ज्ञान होनेसे मुक्तिका साधन नहीं है किंतु महावाक्योंसे उत्पन्न जो जीव और ब्रह्मकी एकताका ज्ञान वही मुक्तिका

कारण है इसका ही वर्णन करते हैं कि, नेतिनेति इस वाक्यसे सम्पूर्ण उपाधियोंका निषेध करके तत्त्वमसि आदि महावाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताको जाने अर्थात् इस व्याससूत्रके अनुसारही वह यह उपदेश है कि, नेति २ यह आत्मा नहीं २ इत्यादि श्रुतियोंके वचनोंसे अतत् (आत्मासे भिन्न) का निरसन (त्याग) करे अर्थात् (आत्मासे भिन्नको जड और अनित्य समझे इस प्रकार स्थूल सूक्ष्म और कार्य--कारणरूप नामरूपात्मक जगत्को अनित्य जाननेके अनंतर इन महावाक्योंसे जीव और परमात्माकी एकताको जानें। उस एकताको ज्ञानको ही मुक्तिका हेतु कहते हैं कि वह[2] ब्रह्म तू है यह जीवात्मा ब्रह्म है प्रधान ब्रह्म है मैं ब्रह्म हूं और महावाक्योंसे एक-

---

१ स एष आदेशो नेतिनेतीत्येतन्निरसनम् ।

२ तत्त्वमसि-अयमात्मा ब्रह्म-प्रज्ञान ब्रह्म--अहं ब्रह्मास्मि

ताके ज्ञानका प्रकार यह है, कि दोनों पद एक अर्थमें जहां वाच्यवाचक भाव संबंधसे वर्ते (कहें) उसे सामानाधिकरण्य कहते हैं और वाच्य उसको कहते हैं जिसका शब्दके उच्चारण करते ही ज्ञान हो जसे घटके उच्चारणसे घडेका और वाचक उसको कहते हैं जिसके उच्चारणसे पदार्थ जाना जाय, जैसे पूर्वोक्त उदाहरणमें घट शब्द अर्थात् घट शब्द और घडेका वाच्य वाचक भाव आदि संबन्ध है वह सम्बंध तीन प्रकारका है-- १ सामानाधिकरण्य २ विशेषण विशेष्यभाव ३ लक्ष्यलक्षण भाव उनमें सामानाधिकरण्य, मुख्यसामानाधिकरण्य और बाधसामानाधिकरण्य भेदसे दो प्रकारका है जिस वस्तुका जिस वस्तुके संग सदैव अभेद हो वह मुख्यसामानाधिकरण्य, जैसे डेलेके सुवर्ण और भूषणके सुवर्णका और जहां किसी अंशको बाधकर अभेद हो वह बाधसामानाधि-

करण्य जैसे भूषणके नामरूपको बाधकर दोनों पूर्वोक्त सुवर्णोंका अभेद होता है अथवा जहां दो पदोंका परस्पर भेद हो और अर्थ एक हो वहाँ बाधसामानाधिकरण्य होता है। जैसे घट और कुम्भ शब्दमें वहां शब्दभेद होनेपरभी मृत्तिकारूप लक्ष्य एक है वा जैसे सोऽयं देवदत्तः (वह यह देवदत्त है जो काशीमें देखा था) इस वाक्यमें सः अयं देवदत्तः ये तीन पद हैं इनमें सः पद तिस परोक्षकालमें दृष्टका बोधक है ऐसे अयं यह पद वर्तमानकालवृत्तिका बोधक है ऐसे दोनों पदोंका भिन्न २ अर्थ है परन्तु दोनोंपदोंका तात्पर्य एक देवदत्तमें है इससे देशकालरूप विशेषणके परित्यागसे देवदत्तरूप पिंड मात्रका बोध होता है इस प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमें परोक्ष आदि विशेषण विशिष्ट चेतन तत्पदका वाच्य अर्थ है और अपरोक्ष आदिविशे-

षण विशिष्ट चेतन त्वंपदका वाच्य अर्थ है इन दोनों पदोंका अर्थ भिन्न २ है और तात्पर्य शुद्ध चेतनके विषे है इससे परोक्ष अपरोक्ष आदि विशेषणोंके त्यागसे चेतनरूप अर्थमें दोनोंका सामानाधिकरण्य है यह सामानाधिकरण्य प्रथम है और दूसरा विशेषण विशेष्यभाव संबंध यह है कि जैसे सोयं देवदत्तः—यहां सः अयं ये दो पद देवदत्त पदके विशेषण हैं और देवदत्त विशेष्य है और ये दोनों अपने २ देश कालरूप अर्थको छोडकर देवदत्तके स्वरूपको बोधन करते हैं इसी प्रकार तत्त्वमसि आदि महावाक्योंमें भी तत्पदका अर्थ परोक्ष आदि विशेषणसहित है और त्वंपदका अर्थ अपरोक्ष आदि विशेषणसहित चेतन है। विशेषणों त्यागकर दोनोंका असि (है) इस पदमें सामानाधिकरण्य है तीसरा सम्बन्ध लक्ष्यलक्षण भाव है कि जैसे सोयं देवदत्तः यहां

सः अयं इन दो पदोंसे देशकाल आदि विशेषणोंको छोडकर देवदत्तमात्र लिखा जाता है इसी प्रकार तत्त्वमसि आदिमहावाक्योंमें भी तत्पदका अर्थ-अद्वितीय-परोक्ष व्यापक चेतन है और त्वंपदका अर्थ-सद्वितीय-अपरोक्ष परिच्छिन्न चेतन है। इन विरुद्ध धर्मोंको त्यागकर एक चेतनजो विरुद्ध धर्मरहित लक्ष्यअर्थ है वह लिखाजाता है इस प्रकार पूर्वोक्त तीनों संबन्धोंसे लक्षणके द्वारा जीव और ब्रह्मकी एकता सिद्ध होती है और वह लक्षण जहत्, अजहत्; जहदजहत्, भेदसे तीन प्रकारकी है जैसे गंगामें घोसियोंका ग्राम है यहां गंगाके प्रवाहरूपवाच्य अर्थमें ग्रामका असंभव है इसलिये गंगापदको अपने प्रवाहरूप वाच्य अर्थको छोडकर तीरमें लक्षणा है--क्योंकि जहांपद अपने सम्पूर्ण अर्थको छोडदे वह जहत् लक्षणा कहाती है और महावाक्योंमें चेतनरूप अर्थ दोनोंका

एक है इससे अर्थका त्याग न होनेसे जहत् लक्षणा नहीं हो सकती, और अरुण (लाल) दौडता है यहां लाल रंगमें दौडना असंभव है इससे अरुण पदकी लाल घोडेमें लक्षणा है यहां अरुण पदकी अपने लालरूप अर्थको न छोडकर लाल घोडेमें अजहत् लक्षणा होती है। क्योंकि जहां अपने अर्थको न छोडकर पद दूसरे अर्थको कहे वहां अजहत् लक्षणा होती है यह लक्षणा भी महावाक्योंमें नहीं हो सकती। क्योंकि उनमें संपूर्ण वाच्य अर्थका ग्रहण नहीं है और जहां किंचित् अर्थका त्याग और किंचित्का ग्रहण हो वहां जहदजहत् लक्षणा होती है वह लक्षणा ही महावाक्योंमें इस प्रकार घटती है। जैसे सोयं देवदत्तः इसवाक्यमें देशफल और पुष्ट कृश आदि विशेषणोंका त्याग है और पिंडमात्र देवदत्तका ग्रहण है ऐसे ही तत्त्वमसि आदि महावा-

क्योंमें समष्टि, व्यष्टि. स्थूल सूक्ष्म आदि विरुद्ध अंशको त्यागकर व्यापक अखंड चैतन्य मात्र-का जहदजहत् लक्षणासे बोध होता है इसको ही भागत्यागलक्षणा कहते हैं ॥ २९ ॥

आविद्यकं शरीरादि दृश्यं बुद्बुदवत्क्षरम् ।
एतद्विलक्षणं विद्यादहं ब्रह्मेति निर्मलम् ॥ ३० ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, चेतन असंग है इस-से स्थूल आदि उपाधियोंके न त्याग करनेमें क्या हानि है सो ठीक नहीं क्योंकि उपाधियोंके त्याग विना अखंड सत् चित्आनंदका ज्ञान इस प्रकार नहीं होसकता जैसे अज्ञानसे आरोपित सर्पके निषेध विना रज्जुका ज्ञान नहीं होता है इस बातका वर्णन करते हैं कि अज्ञानसे कल्पित जो शरीर आदि दृश्य (देखने योग्य) जड पदार्थ हैं उनको बुद्बुद (बुलबुला) के समान नाशवान् स-मझे और इनसे विलक्षण अर्थात् नित्य निर्मल अ-

पने जीवात्माको मैं ब्रह्म हूं ऐसे समझे अर्थात् उपाधिरूप मलोंसे रहित ब्रह्मरूप मैं हूं यह जाने ॥ ३० ॥

देहान्यत्वान्न मे जन्मजराकार्श्यलयादयः ।
शब्दादिविषयः संगो निरिंद्रियतया न च ॥३१॥

भा०—अब महावाक्योंसे उत्पन्न हुई जो जीव और ब्रह्मकी एकता उसके मननका प्रकार कहते हैं कि, स्थूल और सूक्ष्म शरीरसे मैं भिन्न हूं इससे मेरेमें जन्म जरा कृशता मरण आदि नहीं हैं और आदि पदके देनेसे क्षुधा, तृषा आदि जो देहके धर्म हैं वेभी आनंदरूप, असंग मेरेमें नहीं हैं और मैं इंद्रियोंसे रहित हूं इससे शब्द स्पर्श रूप रस गंध आदि विषयोंके संग भी मेरा संबंध नहीं है निदान मैं असंग निर्मल स्वभावरूप ब्रह्म हूं ऐसे मनन करे ॥ ३१ ॥

अमनस्त्वान्न मे दुःखरागद्वेषभयादयः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्र इत्यादिश्रुतिशासनात् ३२

भा०—अब आत्मामें मनके धर्मोंका निषेध कहते हैं कि, मैं मनसे भिन्न हूँ इससे मेरेमें दुःखविषयोंमें प्रीतिरूप राग द्वेष (वैर) संकल्प विकल्प, मोह, शोक, भय, आदि जो मनके धर्म हैं वे मेरेमें नहीं हैं और क्षुधा तृषा आदि जो प्राणोंके धर्म वे भी मेरेमें नहीं हैं क्योंकि मैं मन प्राणोंसे भिन्न हूं इससे श्रुतिने भी आज्ञा की है कि, परमात्मा प्राणसे भिन्न है और मनसे भिन्न है और शुभ्र अर्थात् अविद्याके मलोंसे रहित है और अखण्ड सच्चिदानंदरूप निर्विकार शुद्ध चेतनरूप है ॥ ३२ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्य धारिणी ३३॥

भा०—अब प्राण आदि परमात्मासे उत्पन्न होनेसे अनित्य हैं । इस बातका वर्णन करते हैं कि, इस प्रत्येक भिन्न अर्थात् अन्तःकरणके साक्षी

वा प्रेरक वा असत् जडदुःखरूप संसारसे विपरीत सत् चित् आनंदरूप ब्रह्मसे क्रियाशक्तिरूप प्राण और ज्ञानशक्तिरूप मन (अन्तःकरण) और संपूर्ण इंद्रिय और आकाश वायु अग्नि जल और स्थावर जंगमरूप विश्वके धारणकरनेवाली पृथिवी यह संपूर्ण प्रपंच अनादि अविद्याके द्वारा पूर्वोक्त ब्रह्मसे ही उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥

निर्गुणो निष्क्रियो नित्यो निर्विकल्पो निरंजन ।
निर्विकारोनिराकारो नित्यमुक्तोऽस्मि निर्मल३४॥

भा० प्रकृतिरूप माया और मायाके कार्य बुद्धि, और सत्त्वगुण, राग, इच्छा, आदिसे रहित रूप, निर्गुण और देह आदिकी क्रियासे रहितरूप निष्क्रिय और देह आदिसे भिन्नरूप नित्यचेतनरूप और विकल्पसे रहित अर्थात् मनसे भिन्न निरंजन अर्थात् मायाके मलसे रहित और विकारसे रहित और निराकार अर्थात् आकाशके समान

निरवय नित्यमुक्त अर्थात् मोह आदि जो अज्ञानसे कल्पित बंधन है उनसे रहित और निर्मल अज्ञानसे कल्पित अविद्यारूप मायाके बंधनसे रहित मैं हूं इसप्रकार अपने आत्मरूपको जाने ३४

अहमाकाशवत्सर्वबहिरंतर्गतोऽच्युतः ।
सदा सर्वसमः शुद्धो निःसङ्गो निर्मलोऽचलः ३५ ॥

भा०--कदाचित् कहो कि, जीवात्मा निर्गुण आदिरूप हो परंतु देहवान् प्रतीत होता है इससे परिच्छिन्न हो जायगा सो ठीक नहीं इस शंकाका उत्तर आत्माको असंग दिखाकर देते हैं कि, जगत् के संपूर्ण जो जड दृश्य पदार्थ हैं उनके भीतर मैं आकाशके समान गत (व्यापक) हूँ और सबसे भिन्न एकरस चेतनरूप हूं कदाचित् कहो कि, सबके नाशसे आत्माका भी नाश हो जायगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि मैं अच्युत हूं अर्थात् सम्पूर्ण कल्पित जगत्के नाश होनेपर मेरा

नाश नहीं है । क्योंकि मैं अधिष्ठानरूप हूं कदाचित् कहो कि, अधिष्ठानरूपसे तू सत्य अविनाशी है परंतु अंतःकरणमें तो आपकी सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं और घट आदिमें केवल सत्ताही प्रतीत होती है यह विषमता आपमें है सो ठीक नहीं, क्योंकि मैं सदैव (सब काल) में सम्पूर्ण पदार्थोंके विषे सम (तुल्य) हूं और सत्त्वगुणके कार्य होनेसे स्वच्छ अंतःकरण आदिमें सत्ता और चेतनता दोनों प्रतीत होती हैं और तमोगुणके कार्य मलिन घट आदिमें सत्ता ही प्रतीत होती है इससे मुझ आत्माका कौन अपराध है और मैं शुद्ध अर्थात् पुण्य पापसे रहित हूं और असंग अर्थात् वस्तुतः सबके संबंधसे रहित हूं और निर्मल हूं अर्थात् संशयआदिमलोंसे रहित हूं और अचल हूं अर्थात् सच्चिदानंदरूप आदि अपने धर्मोंसे चलायमान नहीं होता ॥ ३५ ॥

नित्यशुद्धविमुक्तैकमखंडानन्दमद्वयम् ।
सत्यं ज्ञानमनंतं यत्परं ब्रह्माहमेव तत् ॥३६॥

भा०--अब त्वंपदार्थ जीव, और तत् पदार्थ ब्रह्मका जो लक्ष्यपूर्वक वर्णन किया है उन दोनोंके अभेदका चिंतन (विचार) करते हैं कि नित्य अर्थात् भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें बाधारहित शुद्ध अर्थात् अविद्या आदि मलसे रहित विमुक्त अर्थात् संसार रहित एक अर्थात् सजातीय भेदसे शून्य अखंड अर्थात् देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे शून्य आनंद (सुखरूप) अद्वय अर्थात् विजातीय और स्वगत भेदसे रहित इस प्रकारका जो सत्य, ज्ञान, अनंतरूप परब्रह्मका स्वरूप है वह इस श्रुतिमें[1] भी कहा है वही सच्चिदानंदरूप मैं हूं इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा की एकताकी चिंता करे ॥ ३६ ॥

---

१ सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म ।

एवं निरंतराभ्यस्ता ब्रह्मैवास्मीति वासना ।
हरत्यविद्याविक्षेपान्रोगानिव रसायनम् ॥ ३७ ॥

भा०—इसप्रकार चिरकालपर्यंत किये अभ्याससे दृढ हुये जीव ब्रह्मकी एकताके ज्ञानसे उत्पन्न हुई विद्या उसी समय अविद्या और अविद्यासे उत्पन्न जन्ममरण आदिरूप संसारको नष्ट कर देती है, इसका वर्णन करते हैं, कि इस पूर्वोक्त रीतिसे बहुत कालतक निरंतर अभ्यास (मनन) का ब्रह्मही मैं हूं यह वासना अर्थात् देह और आत्माकी एकताके ज्ञानके तुल्य जो ब्रह्म और आत्माकी एकताका दृढ ज्ञान वह अविद्याके किये चित्तके विक्षेप अर्थात् आत्मा और ब्रह्मका भेद ज्ञान आदि उनको इस प्रकार नष्ट करती है जैसे रोगोंको रसायन (औषध) सेवनसे नष्ट करती है ॥ ३७ ॥

विविक्तदेश आसीनो विरागो विजितेंद्रियः ।
भावयेदेकमात्मानं तमनंतमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

भा०--अब ब्रह्म और आत्माकी एकताके विचारका साधन कहते हैं कि, एकांत स्थानमें स्थित और विराग अर्थात् शब्द स्पर्श आदिविषयोंकी इच्छासे रहित और विशेषकर जीती है इंद्रिय जिसने वह पुरुष अनन्यबुद्धि होकर अर्थात् अपने एक आत्मामें ही बुद्धिको लगाकर उस एक अनंत अर्थात् देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे शून्य वा नाशरहित आत्माकी भावना (विचार) करे कि, जो सब भूतोंमें स्थित चेतनरूप ब्रह्म है वही मैं हूं अन्य नहीं, यह निश्चय करे इस प्रकार चिंतन करनेसे ब्रह्म और आत्माकी एकताका दृढ निश्चय हो जाता है ॥ ३८ ॥

आत्मन्येवाखिलं दृश्यं प्रविलाप्य धिया सुधीः ।
भावयेदेकमात्मानं निर्मलाकाशवत्सदा ॥३९॥

भा०--कदाचित् कहो, कि यदि दृश्य (देखने योग्य) प्रपंच व्यवहार दशामें प्रत्यक्ष वर्तमान है तो

एकताकी भावना कैसे हो सकती है । इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, शुद्ध है अंतःकरण वा बुद्धि जिसकी ऐसा मुमुक्षु आत्माके विषे अर्थात् कारण-रूप विवेकवाली बुद्धिमें सम्पूर्ण दृश्य (दीखते) जगत्को लय करके एक आत्माकी निर्मल आकाशके समान भावना विचार करे अर्थात् शरत्कालके मेघ रहित आकाशके समान आत्मा-को भी स्वच्छ और एकरस समझे और लयका प्रकार यह है कि पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें, आकाशको अव्याकृत (मूल प्रकृतिका माया) में और अव्याकृतको ब्रह्ममें लय करे, फिर शुद्ध ब्रह्म व्यापक रूप मैं हूं ऐसा चिंतन करे ॥ ३९ ॥

नामवर्णादिकं सर्वं विहाय परमार्थवित् ।
परिपूर्णचिदानन्दस्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४० ॥

भा०—अब संपूर्ण दृश्य प्रपंचके त्यागसे समाधिके विषे जो विवेकीकी स्थिति, उसका वर्णन करते हैं कि, परमार्थ (मोक्ष वा ब्रह्म) का ज्ञाता विवेकी पुरुष नामरूप आदि संपूर्ण दृश्य जाति मूर्ति आदि प्रपंचको त्यागकर परिपूर्ण (व्यापक) अधिष्ठान अंतर्यामी सत् चित् आनंद–स्वरूप साक्षी शुद्ध चेतनरूपसे टिकता है अर्थात् परिपूर्ण आदि स्वरूप ही अपने जीवात्माको मानता है, और आत्माका जो ज्ञानी है उसकी स्थिति इस वचनमें भी भगवान्ने वर्णन की है कि, जैसे पवन रहित देशमें दीपक निश्चल रहता है वही उपमा उस योगीकी है जिसका चित्त वशमें है और जो अपने योगमार्ग (चित्तकी वृत्तिको रोकना) में लगरहा है ॥ ४० ॥

---

१ यथा दीपो निवातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता । योगेन यतचित्तस्य युंजतो योगमात्मनः ॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयभेदः परात्मनि न विद्यते ।
चिदानन्दैकरूपत्वाद्दीप्यते स्वयमेव हि ॥ ४१ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, समाधिमें पृथिवी आदि दृश्य प्रपंचके लय होनेपर भी ज्ञाता, ज्ञान ज्ञेयका भेद त्रिपुटीरूप प्रपंचके विद्यमान रहते पूर्वोक्त दीपककी उपमा योगीमें कैसे घट सकती है ? इस शंकाके उत्तरमें कहते हैं कि, सविकल्पक समाधिमें यद्यपि ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयका भेद प्रतीत होता है परन्तु निर्विकल्पक समाधिमें प्रतीत हुआ जो परब्रह्मरूप परमात्मा है उसमें ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय-का भेद प्रतीत नहीं होता है क्योंकि, वह परमात्मा चिदानंदरूप होनेसे स्वयं एव (आपोआप) प्रकाशित होताहै अर्थात् उसके ज्ञानके लिये किसी भी ज्ञान आदिकी अपेक्षा नहीं है ॥ ४१ ॥

एवमात्मारणौ ध्यानमथने सततं कृते ।
उदितावगतिर्ज्वाला सर्वाज्ञानेंधनं दहेत् ॥ ४२ ॥

भा०—इसप्रकार ब्रह्म और आत्माकी एकताके ज्ञानार्थ जो प्रयत्न उसके फलका वर्णन करते हैं कि, इस प्रकार आत्मा (मन) को नीचेकी अरणि और ओंकारको ऊपरकी अरणि (मथने की लकडी) करके निरंतर ध्यानरूप मथन करने पर उदित (उत्पन्न) हुई जो अखंड ब्रह्माकार वृत्तिरूप ज्वाला वह संपूर्ण अज्ञान और अज्ञान-कार्य जन्ममरण आदि संसाररूप ईंधनको दग्ध (भस्म) करदेती है सोई इस श्रुतिमें लिखा है कि मनको नीचेकी ओर ओंकारको ऊपरकी अरणि बनाकर ज्ञानके मथनेसे जो कर्मोंको दग्ध करता है वही पंडित है ॥ ४२ ॥

अरुणेनेव बोधेन पूर्वसंतमसे हृते ।
तत आविर्भवेदात्मा स्वयमेवांशुमानिव ॥ ४३ ॥

---

१ आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ज्ञाननिर्मथनाभ्यासाद्दहेत्कर्म स पंडितः ।

भा०—उत्पन्न हुई पूर्वोक्त ज्वाला अज्ञानरूप ईंधनको दग्ध करतीहै और तभी आवरणरहित आत्माका प्रकाश होता है इन दोनों बातोंको दृष्टांतसे स्पष्ट करते हैं कि जैसे अरुण (सूर्यकासारथी) के उदय होनेसे प्रथम जो गाढ अंधकार उसका नाश होनेसे सूर्यका अखंड प्रकाश होता है इसी प्रकार बोध (एकताका ज्ञान) से अज्ञानरूप अंधकारकी निवृत्ति होनेपर आत्माका भी सूर्यके समान प्रकाश होता है अर्थात् साक्षात् ब्रह्मज्ञान हो जाता है, सोई गीतामें लिखा है कि, जिनका वह अज्ञान, ज्ञानसे नष्ट हो गया है उनको ब्रह्मका ज्ञान इस प्रकार प्रकाशित होता है जैसे सूर्यका प्रकाश होता है ॥४३॥

आत्मा तु सततं प्राप्तोऽप्यप्राप्यवदविद्यया ॥
तन्नाशेऽप्राप्तवद्भाति स्वकंठाभरणं यथा ॥४४॥

---

१ ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।

भा०--यदि श्रुति आदि प्रमाणोंसे आत्मा साक्षात् अपरोक्ष है तो नित्यप्राप्त है क्योंकि अप्राप्त और परोक्ष नहीं होता है तो ऐसे ब्रह्मकी अज्ञानके नाशसे प्राप्ति कैसे कहते हो सो ठीक नहीं, क्योंकि नित्यप्राप्त भी आत्मा अविद्यासे अप्राप्तके समान और अविद्याके नाशसे प्राप्तके समान प्रतीत होता है इस बातको दृष्टांतसे वर्णन करते हैं कि, यद्यपि ज्ञानदृष्टिसे आत्मा निरंतर प्राप्त है तथापि अविद्यासे अज्ञानियोंको अप्राप्तके समान और अविद्याके नाश होनेपर प्राप्तके समान इस प्रकार प्रतीत होता है, जैसे अपने कंठका भूषण अज्ञानसे अप्राप्त और ज्ञानसे प्राप्त होजाता है ॥ ४४ ॥

स्थाणौ पुरुषवद्भ्रांत्या कृता ब्रह्मणि जीवता ।
जीवस्य तात्त्विके रूपे तस्मिन्दृष्टे निवर्तते॥४५॥

भा०—कदाचित् कहो कि, जिसका अपरोक्ष साक्षात्कार है वह ब्रह्म ही नित्य प्राप्त है जीवात्मा

नित्यप्राप्त नहीं हो सकता सो ठीक नहीं, क्योंकि अज्ञानसे भ्रमके द्वारा परमात्मा ही जीवभावको प्राप्त हो जाता है वस्तुतः कोई जीव नहीं है। इस बातको दृष्टांतसे वर्णन करते हैं कि जैसे स्थाणुमें अंधकारके विषे भ्रांतिसे पुरुषको तुल्यता प्रतीत होती है इस प्रकार ब्रह्ममें भ्रमसे जीवभाव प्रतीत होता है अर्थात् अनादि अज्ञानसे ब्रह्मही जीव प्रतीत होने लगता है और महावाक्योंके द्वारा जीवका जो वह तात्त्विक (सच्चा) रूप है उसके साक्षात्कार करनेसे (जाननेसे) वह जीवभाव इस प्रकार निवृत्त हो जाता है जैसे स्थाणुके ज्ञानसे पुरुषभ्रमकी निवृत्ति हो जाती है ॥ ४५ ॥

तत्त्वस्वरूपानुभवादुत्पन्नं ज्ञानमंजसा ॥
अहं ममेति चाज्ञानं बाधते दिग्भ्रमादिवत् ४६॥

भा०—कदाचित् कहो कि, विवेकियोंको भी अहं-मम (मैं मेरी) इत्यादि व्यवहारकी प्रतीतिसे

संसारकी निवृत्ति कैसे होगी सो ठीक नहीं, क्योंकि अज्ञानसे उत्पन्न वा पूर्वोक्त व्यवहार तत्त्वज्ञानसे नष्ट हो जाता है इस बातका दृष्टांतपूर्वक वर्णन करते हैं कि, वास्तविक सच्चिदानंदरूप जीवका जो यथार्थ स्वरूप उसके अनुभव (ज्ञान) से उत्पन्न हुआ जो तत्वमसि आदि महावाक्योंके द्वारा जीव और ब्रह्मकी एकताका दृढ ज्ञान उससे सुखपूर्वक ही अहं-मम इस अज्ञानका इस प्रकार बोध होता है जैसे दिशाओंका भ्रम पूर्वमें सूर्योदयके ज्ञानसे नष्ट हो जाता है ॥ ४६ ॥

सम्यग्विज्ञानवान्योगी स्वात्मन्येवाखिलं स्थितम् ।
एकं च सर्वमात्मानमीक्षते ज्ञानचक्षुषा ॥ ४७ ॥

भा०—अब निवृत्त हुआ है अज्ञान जिनका ऐसे विवेकियोंकी दृष्टिका वर्णन करते हैं कि संशय और विपरीत ज्ञानसे रहित जो ब्रह्मके साक्षात् ज्ञाता योगी हैं, उनको ज्ञान-

रूप कूटस्थ साक्षी–स्वरूप अपने आत्माके विषेही संपूर्ण दृश्य प्रपंच स्थित (कल्पित) दीखता है और संपूर्ण जगत्को ज्ञान दृष्टिसे एक आत्मरूप ही देखते हैं अर्थात् आत्मासे भिन्न जगत्को शशशृंग और आकाश पुष्पके समान कल्पित समझकर आत्माके स्वरूपको ज्ञानदृष्टिसे देखते हैं ॥ ४७ ॥

आत्मैवेदं जगत्सर्वमात्मनोऽन्यन्न विद्यते ।
मृदो यद्वद्घटादीनि स्वात्मानं सर्वमीक्षते ॥ ४८ ॥

भा०–कदाचित् कहो कि, प्रत्यक्षसे प्रतीत इस जगत्को आत्मासे भिन्न कैसे कहते हो सो ठीक नहीं क्योंकि, यद्यपि उपादेय (कार्य) उपादान (कारण) से भिन्न भी प्रतीत होता है तथापि पूर्वोक्त बाधसा-मानाधिकरण्यसे अभेद प्रतीत होता है इस बातको दृष्टांतपूर्वक वर्णन करते हैं कि, यह संपूर्ण जगत्

आत्माही है क्योंकि, आत्मासे उत्पन्न होनेसे आत्मासे अन्य इस प्रकार नहीं है जैसे उपादान-रूप मृत्तिकासे हुई उत्पन्न हुई घट आदि मृत्तिकासे भिन्न नहीं है इसप्रकार संपूर्ण जगत्को आत्मस्व-रूपही देखता है, अपनेसे भिन्न नहीं देखता ॥४८॥

जीवन्मुक्तिस्तु तद्विद्वान्पूर्वोपाधिगुणांस्त्यजेत् ।
सच्चिदानन्दरूपत्वाद्भवेद् भ्रमरकीटवत् ॥ ४९ ॥

भा०—अब ज्ञानीकी वास्तव दृष्टिको कह-कर जीवन्मुक्ति अवस्थाका वर्णन करते हैं कि जीवन्मुक्त पुरुष तो पूर्वोक्त जीव और ब्रह्मकी एकताको जानकर तत्त्वज्ञानसे पूर्व जो उपाधियों-के गुण थे उनको श्रवण आदिद्वारा मायाके धर्म जानकर विवेकसे त्यागता है और फिर इस प्रकार सच्चिदानन्दरूप होजाता है जैसे भृंगी नामका कीट भ्रमर कीटके भयसे भ्रमर कीट-रूपही हो जाता है ॥ ४९ ॥

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान् ।
योगी शांतिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते॥ ५०॥

भा०—अब जीवन्मुक्तकी स्थितिका वर्णन करते हैं कि, आत्माके विषे है आराम (स्थिति) जिसको ऐसा योगी मोहरूपी अज्ञानके समुद्रको तरकर और राग द्वेष आदि राक्षसोंको हतकर शान्तिसे युक्त हुआ विराजमान होता है इस श्लोकका श्लेषसे दूसरा भी अर्थ हो सकता है कि जैसे—श्रीरामचन्द्रजीने समुद्रको तरकर और रावण आदि राक्षसोंको हतकर और सीतासे संयुक्त हो-कर राजसिंहासनपर स्थिति की थी इसप्रकार ब्रह्मज्ञानका साधक योगी तत्त्वज्ञानके द्वारा मोह-रूपी समुद्रको तर और उन राग द्वेष आदि राक्ष-सोंको हतकर जिन्होंने शांतिरूप सीताको चुराया था, फिर शान्तिसे युक्त हुआ श्रीरामचंद्रके समान विराजमान होताहै अर्थात् निवृत्तिरूप सिंहासनपर बैठता है ॥ ५० ॥

बाह्यानित्यसुखासक्तिं हित्वाऽऽत्मसुखनिर्वृतः ।
घटस्थदीपवत्स्वच्छः स्वांतरेव प्रकाशते ॥५१॥

भा०—अब लक्षणसे जीवन्मुक्तकी अवस्थाका दृष्टान्तसे वर्णन करते हैं कि, नेत्र आदि बाह्य इन्द्रियोंके संबन्धसे उत्पन्न हुआ जो विषयानन्दरूप अनित्यसुख उसके विषे आसक्ति (प्रीति) को त्यागकर आत्मसुखसे निर्वृत (सुखी) हुआ स्वच्छरूपसे अपने अन्तःकरणमें इसप्रकार साक्षात् ब्रह्मरूप प्रकाशता है जैसे घटके विषे स्थित दीपक घटके भीतर ही प्रकाशता है बाहर नहीं सोई गीतामें लिखा है कि हे अर्जुन ! जब मनकी सब कामनाओंको त्यागता है तब अपने आत्मामें ही सन्तुष्ट हुआ स्थितप्रज्ञ (स्थिरबुद्धि) कहाता है ॥ ५१ ॥

उपाधिस्थोऽपि तद्धर्मैर्न लिप्तो व्योमवन्मुनिः ।
सर्वविन्मूढवत्तिष्ठेदसक्तो वायुवच्चरेत् ॥ ५२ ॥

---

१ प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान् । आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥

भा०–उपाधियोंमें स्थित भी उपाधियोंका साक्षीरूप मुनि अर्थात् वेदांतशास्त्रका मनन करनेवाला तत्वज्ञानी उपाधियोंके सुख दुःख आदि धर्मोंसे इस प्रकार लिप्त नहीं होता जैसे आकाशधूलि आदिसे लिप्त नहीं होता और सबका ज्ञाता भी वह मूढके समान टिकता है वह और विषयोंमें आसक्त हुआ वह वायुके समान विचरताहै अर्थात् जैसे वायुसुगंधित पदार्थोंमें प्रीतिसे रहित होकर गमन करता है इसीप्रकार ज्ञानी भी विषयों में प्रीतिको त्यागकर अपने स्वरूपमें विचरता है॥५२॥

उपाधिविलयाद्विष्णौ निर्विशेषं विशेन्मुनिः।
जले जलं वियद्व्योम्नि तेजस्तेजसि वा यथा॥५३॥

भा०--अब ज्ञानीकी विधेय कैवल्यमुक्तिका वर्णन करते हैं कि, देह आदि उपाधियोंके लय (नाश) होनेसे वेदांतका मनन करनेवाला मुनि पृथिवी आदि विशेषोंसे रहित व्यापकरूप विष्णु (परब्रह्म) में इस प्रकार प्रविष्ट होता है अर्थात्

परब्रह्मरूप हो जाता है जैसे नदीका जल समुद्रके जलमें, दीपक आदिका तेज अग्निमें और घटका आकाश महान् आकाशमें प्रविष्ट होजाता है। अर्थात् जैसे जल आदिमें मिले जल आदि एकरूप होजाते हैं इसी प्रकार परब्रह्ममें मिला जीवात्मा परब्रह्म रूप ही होजाता है भिन्नरूप नहीं होता ॥ ५३॥

यल्लाभान्नापरो लाभो यत्सुखान्नापरं सुखम् ।
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥५४॥

भा०—अब आठश्लोकोंसे उस परब्रह्मका निरूपण करते हैं, विदेह मुक्तिमें जिसकी प्राप्ति होती है कि, जिस परब्रह्मके लाभ अर्थात् प्राप्तिसे दूसरा लाभ नहीं अर्थात् परमपुरुषार्थरूप उस लाभमें संपूर्ण जगत्के लाभ अंतर्गत हैं और जिसके सुखसे दूसरा सुख नहीं, क्योंकि सर्वोत्तम उस सुखमें जगत्के तुच्छ सुख अन्तर्गत हो जाते हैं और जिसके ज्ञानसे उत्तम दूसरा ज्ञान नहीं अर्थात् मोक्षको हेतु होनेसे ब्रह्मज्ञान ही अत्यन्त

श्रेष्ठ है उसको ही ब्रह्मस्वरूप निश्चय करे ॥ ५४ ॥

यद्दृष्ट्वा न परं दृश्यं यद्भूत्वा न पुनर्भवः ।
यज्ज्ञात्वा न परं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥५५॥

भा०--जिसब्रह्मको देखकर दूसरा पदार्थ देखने योग्य नहीं, क्योंकि अधिष्ठानरूपब्रह्मके साक्षात्कारसे ब्रह्ममें कल्पित संपूर्ण जगतका साक्षात्कार हो जाता है और जिस ब्रह्मरूप होनेसे दूसरा होना नहीं अर्थात् फिर संसारमें जन्म नहीं होता है सोई [1]गीतामें लिखा है कि जिस ब्रह्ममें जाकर फिर निवृत्त नहीं होते वह मेरा सर्वोत्तम धाम है और जिसको जानकर दूसरा ज्ञान नहीं क्योंकि, कारणरूप ब्रह्मको जानकर कारणसे भिन्न कार्यकी सत्ता नहीं रहती अर्थात् कारणके ज्ञानसे समस्तकार्य जाना जाता है उसको ब्रह्मनिश्चय करें अर्थात् जानें ॥ ५५ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधः पूर्णं सच्चिदानंदमद्वयम् ।
अनंतं नित्यमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५६ ॥

---

१ यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।

भा०—कदाचित् कहो कि, विदेहमुक्तिकी अवस्थामें जिस ब्रह्मको तत्ववेत्ता प्राप्त होता है वह परिच्छिन्न है वा अपरिच्छिन्न अर्थात् अव्यापक है वा व्यापक यदि परिच्छिन्न है तो नाशवान् होनेसे परमपुरुषार्थ सिद्ध न होगा और अपरिच्छिन्नहै तो सर्वत्र विद्यमान होनेसे उसकी प्राप्ति न बनेगी इस शंकाके उत्तरमें परिपूर्ण नित्य आनंदरूप ब्रह्मका वर्णन करते हैं कि, जो सच्चिदानंद ब्रह्म तिर्यक् अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण और ऊपर नीचे पूर्ण है और देशकालवस्तुके परिच्छेदसे रहित है और नित्य (सत्य) और सजातीय विजातीय स्वगत तीनों भेदोंसे रहित है उस ब्रह्मको मुमुक्षु पुरुष निश्चय करे ॥ ५६ ॥

अतद्व्यावृत्तिरूपेण वेदांते लक्ष्यतेऽव्ययम् ।
अखंडानंदमेकं यत्तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ५७ ॥

भा०—आत्मासे भिन्नकी व्यावृत्ति (निषेध) रूपसे जो ब्रह्म अविनाशीरूपसे तत्वमसि आदि

महावाक्योंके द्वारा लेखा जाता है और जो अखण्ड आनंद एक सुखरूप है उसको मुमुक्षु पुरुष ब्रह्म जाने ५७

अखंडानंदरूपस्य तस्यानंदलवाश्रिताः ।
ब्रह्माद्यास्तारतम्येन भवंत्यानंदिनोऽखिलाः॥५८॥

भा०—कदाचित् कहो कि, ब्रह्मा इन्द्र आदिभी देवता आनंदके भोक्ता शास्त्रमें कहे हैं तो ब्रह्मकोही सर्वोत्तम आनन्दरूप कैसे, कहते हो ? सो ठीक नहीं, क्योंकि, ब्रह्मा आदिकोंको जो आनंद है वह भी ब्रह्मानन्दका लेश है उससे परे कोई आनन्द नहीं इस बातका वर्णन करते हैं कि, उस अखण्डानन्दरूप ब्रह्मानन्दके देशके आश्रय होकर ब्रह्मा आदि संपूर्ण देवता तारतम्यसे अर्थात् अपने अपने पुण्यके अनुसार न्यूनाधिक भावसे आनन्दवाले होतेहैं अर्थात् उस अपरिच्छिन्नब्रह्मका जो आनन्दमें उसका ही अंश ब्रह्मा आदिदेवताओंके आनन्दमें झलकता है और ब्रह्मानंदकी अपेक्षा उनका आनन्द क्षुद्र प्रतीत होता है अत-

एव ब्रह्मानन्दसे परे कोई आनंद नहीं ॥ ५८ ॥

तद्युक्तमखिलं वस्तु व्यवहारस्तदन्वितः ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म क्षीरे सर्पिरिवाखिले ॥ ५९ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, वह आनन्दरूप ब्रह्म कहां रहता है जिसका लेश ब्रह्मा आदिके आनन्दमें है ? इस शंकाके उत्तरमें सर्वव्यापी ब्रह्मको दृष्टान्तके द्वारा देशकालसे रहित वर्णन करते हैं कि, तिस सच्चिदानंदरूपसे घट पट आदि संपूर्ण वस्तु युक्त हैं अर्थात् घटपट आदि संपूर्ण पदार्थ प्रकाशित होते हैं और वचनग्रहण गमन त्याग आनंद आदि संपूर्ण व्यवहार उस ब्रह्मसे ही युक्त (सिद्धि) हैं सोई गीतामें लिखा है कि, संपूर्ण इन्द्रियोंके गुणोंका प्रकाशक और संपूर्ण इन्द्रियोंसे रहित वह ब्रह्म है तिससे ब्रह्म संपूर्ण वस्तुओंमें इसप्रकार व्यापक है जैसे संपूर्ण दूधमें घृत व्यापक होकर रहता है ॥ ५९ ॥

---

१ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।

अनण्वस्थूलमह्रस्वमदीर्घमजमव्ययम् ।
अरूपगुणवर्णाख्यं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥ ६० ॥

भा०--इस प्रकार प्रपंचमें व्यापक भी परमात्माको असंग होनेसे प्रपंचमें धर्मोंमें स्पर्शका अभाव वर्णन करते हैं आत्मा अणुरूप नहीं अर्थात् सूक्ष्मरूप नहीं और श्रुतिमें जो आत्माको अणुरूप कहा है वह इसलिये है कि, आत्मा जाननेके अयोग्य है अर्थात् जाननेको कठिन है और आत्मा स्थूल (महान्) नहीं क्योंकि जिन घट पटआदि पदार्थोंमें महान् बुद्धि हो तो वे अनित्य हैं और और श्रुतिमें जो आत्माको महान् से महान् कहा है वह सबके अधिष्ठान आत्माकी श्रेष्ठताके तात्पर्यसे है कुछ महान् पदका परिणाम अर्थ नहीं और आत्मा ह्रस्व और दीर्घ परिमाणसे रहित है और अज अव्यय अर्थात् जन्म और मरणसे रहित है और रूप गुण ब्राह्मण आदि वर्णोंसे रहित है वह ब्रह्म है ऐसा मुमुक्षु पुरुष निश्चय करे ॥ ६० ॥

यद्भासा भासतेऽर्कादिर्भास्यैर्यत्तु न भास्यते ।
येन सर्वमिदं भाति तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् ॥६१॥

भावार्थ--जिस ब्रह्मकी भाषा (तेज) से सूर्य आदिका प्रकाश होताहै और प्रकाश करने योग्य सूर्य आदि जिस ब्रह्मको प्रकाश नहीं कर सकते और जिससे यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित होता है वह ब्रह्म है ऐसा निश्चय मुमुक्षु पुरुष करे अर्थात् प्रकाश करने वाला सूर्य आदिका भी प्रकाशक ब्रह्मको समझे॥६१॥

स्वयमंतर्बहिर्व्याप्य भासयन्नखिलं जगत् ।
ब्रह्म प्रकाशते वह्नि प्रतप्तायसपिंडवत् ॥६२॥

भा०--इस प्रकार विदेह कैवल्यमें स्थितिको कहकर परम पुरुषार्थके (मोक्ष.) तत्त्ववेत्ताके निश्चयको कहते हैं, पूर्वोक्त ब्रह्म ब्रह्मरूपसे जगत्के बाहर भीतर व्यापक होकर संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता हुआ स्वयं भी इस प्रकार प्रकाशता है जैसे अग्निसे तपायमान लोहके पिण्डमें सर्वत्र व्याप्त होकर अग्नि प्रकाशित होता है ॥ ६२ ॥

जगद्विलक्षणं ब्रह्म ब्रह्मणोऽन्यन्नकिंचन ।
ब्रह्मान्यद्भाति चेन्मिथ्या यथा मरुमरीचिका॥६३॥

भा०-ब्रह्म जगत्से विलक्षण है अर्थात् जड मिथ्या और दुःखरूप जगतकी अपेक्षा सच्चित् आनंदरूप ब्रह्म भिन्न है और ब्रह्मसे अन्य कुछ भी नहीं है और जो ब्रह्मसे भिन्न घट पट आदि पदार्थ प्रतीत होते हैं वे इस प्रकार मिथ्या हैं जैसे मरुदेशके रेतमें मरीचिका (अर्थात् जलके कण अथवा तेजका पुंज) प्रतीत होता है वास्तवमें ब्रह्मही सत्य है उससे भिन्न सब मिथ्या है॥ ६३ ॥

दृश्यते श्रूयते यद्यद्ब्रह्मणोऽन्यन्न तद्भवेत् ।
तत्त्वज्ञानाच्च तद्ब्रह्म सच्चिदानंदमद्वयम् ॥६४॥

भा०--फिर भी पूर्वोक्तका ही प्रत्यक्ष स्वरूपसे वर्णन करते हैं कि, ब्रह्मसे भिन्न जो कुछ दीखता है वा कानोंसे सुना जाता है और मनसे स्मरण किया जाता है वह सब ब्रह्मसे भिन्न नहीं है और तत्वज्ञान से वह ब्रह्म सत् चित् आनन्द अद्वैतस्वरूप है॥६४॥

सर्वगं सच्चिदात्मानं ज्ञानचक्षुर्निरीक्षते ।
अज्ञानचक्षुर्नेक्षेत भास्वंतं भानुमंधवत् ॥ ६५ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, सच्चिदानंद ब्रह्म सर्वव्यापक है तो सर्वत्र क्यों नहीं दीखता सो ठीक नहीं सर्वव्यापी भी ब्रह्म तत्त्वज्ञानियोंको दीखता है अज्ञानियोंको नहीं कि, सर्वत्र व्यापक भी सत्‌चित् आनन्दरूप आत्माको वही पुरुष देखता है जिसके ज्ञानरूपी नेत्र विद्यमान हैं और जो अज्ञानचक्षु है अर्थात् जिसकी दृष्टि अज्ञानसे आवृत है वह पुरुष अपने सच्चिदान्दरूप आत्माको इसप्रकार नहीं देखता (जानता) है जैसे प्रकाशमान सूर्यको नेत्रहीन (अंधा) पुरुष नहीं देखता है ॥ ६५ ॥

श्रवणादिभिरुद्दीप्तो ज्ञानाग्निपरितापितः ।
जीवः सर्वमलान्मुक्तः स्वर्णवद्द्योतते स्वयम् ॥ ६६ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, ज्ञानचक्षु पुरुषोंका विवेकसे देह इंद्रियोंमें अध्यास रूप मलके दूर होनेपर भी पूर्व जन्मके अध्याससे संसारकी वासनाके वशीभूत

होकर फिर भी अहं मनुष्य (मैं मनुष्य हूं) ऐसा देहरूप बंधन प्रतीत होता है तो आत्मस्वरूपमें स्थिति मुक्ति कैसी होसकती है ? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदिसे भली प्रकार प्रज्वलित जो ज्ञानरूप अग्नि तिससे परितापित (युक्त) जो जीव है वह सम्पूर्ण मलोंको त्यागकर अर्थात् अज्ञानसे निवृत्तहोकर सुवर्णके समान स्वयंही प्रकाशरूप होता है भावार्थ यह है कि, सच्चिदानंदरूप होकर प्रकाश होनेपर मैं मनुष्य हूँ यह अध्यास फिर नहीं होता है ॥ ६६ ॥

हृदाकाशोदितो ह्यात्मा बोधभानुस्तमोऽपहृत् ।
सर्वव्यापी सर्वधारी भाति सर्वं प्रकाशते ॥ ६७ ॥

भा०—कदाचित् कहो कि, इस प्रकार शुद्ध हुए आत्माका क्या रूप होता है और कहां प्रकट होता है और किसको प्रकाशता है ? इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, इसप्रकार जीव ब्रह्मकी एकताको ज्ञानसे

शुद्ध हुआ निर्मल बोधरूप सूर्य (आत्मा) हृदयाका-उदय होकर अंधकाररूप अन्तःकरणके मलको हरता (नाशता) है और सबको प्रकाश करता है। आप स्वयंप्रकाशरूप है। कदाचित् कहोकि हृदयाकाशको परिच्छिन्न (नाशवान्) होनेसे आत्मा भी तिसके संग परिच्छिन्न होजायगा इस शंकाका उत्तर देते हैं कि, आत्मा सर्वव्यापी है अर्थात् जगत्में पूर्ण है और सबका आधार है अर्थात् अज्ञानके कार्य जगत्का आधिष्ठान है। तात्पर्य यह है कि भ्रमरूप हृदयाकाश व्यापक रूप आत्माका नाशक नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥

दिग्देशकालाद्यनपेक्ष्य सर्वगं शीतादिहृन्नित्यसुखं निरंजनम् । यः स्वात्मतीर्थं भजते विनिष्क्रियःस सर्ववित्सर्वगतोऽमृतो भवेत् ॥ ६८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य--श्रीमच्छंकराचार्यकृत

आत्मबोधः समाप्तः ॥

भा०—अब आत्मतत्त्वज्ञानको तीर्थरूप वर्णन करते हैं और कर्म और सब तीर्थ और सब देवताओंकी सेवाका जो फल है उसकी अपेक्षा उत्तम फल आत्मज्ञानरूप तीर्थका है क्योंकि, आत्माकी सेवासे संपूर्ण सेवाओंकी आकांक्षा शांत हो जाती है। कदाचित् कहो कि तत्वज्ञानीभी स्वाभाविक पापोंके दूर करनेकेलिये प्रयागआदि तीर्थोंका सेवन करते हैं तो आत्मज्ञानको स्वर्णके समान प्रकाशमान और संपूर्ण मलसे रहित कैसे कहते हो? इस शंकाके उत्तरमें आत्मरूप तीर्थमें स्नानके कर्त्ताको कुछ भी कर्तव्य नहीं इसका वर्णन करते हैं कि, दिशा (पूर्व आदि) और देश (कुरु आदि) काल (भूत आदि) इन सबकी अपेक्षासे रहित और सर्वत्र व्यापकरूप और शीत आदिके नाशक अर्थात् शीत उष्ण आदि द्वंद्वके नाशक और सर्वदा सुखरूप और निरंजन अर्थात् मायाके कार्य जगतरूप मलसे रहित

जो आत्मारूप तीर्थ उसको जो मनुष्य क्रिया (कर्म) ओंसे रहित होकर भजता है अर्थात् सब कर्मोंको त्यागकर जो आत्मतीर्थके विचारमें तत्पर रहता है, सर्वमें व्यापक हुआ और सबका ज्ञाता वह अमृतरूप होजाता है अर्थात् जो आत्मतत्त्वका श्रवण मनन निदिध्यासन आदिके द्वारा विचार करते हैं वे सबके ज्ञाता है और जो जन्ममरणरूप संसारके अभावका फल उनको मिलता है वह किसी तीर्थाटन आदि कर्म करनेवालेको नहीं मिलता है अतएव मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मतीर्थकी सेवा करना अत्यंत आवश्यक है ॥६८॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमच्छंकराचार्यकृतात्म-बोधस्यपंडितमिहिरचंद्रकृतभाषाविवृतिः समाप्ता ।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS